ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 102-108

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

'अज्ञेय जी' के काव्य में 'पद–पूर्वार्द्ध वक्रता' एक अनुशीलन

सुरेन्द्र कुमार शर्मा
एसो0 प्रो0– हिन्दी विभाग, अयोध्या प्रसाद मेमोरियल पी0 जी0 कालेज उझानी, बदाँयू (उ0प्र0), भारत

Received- 11.08.2020, Revised- 15.08.2020, Accepted - 17.08.2020 E-mail: - dr.sharma7409@gmail.com

सारांश : *वर्णों का समुदाय विभक्तिमय होने पर 'पद' कहलाता है, दूसरे शब्दों में अगर वर्णों के समूह में विभक्ति जोड़ दी जाये तो नवीन शब्द 'पद' की संज्ञा से विभूषित होता है– 'सुपतिड़ तं पदम'।[1] पद के दो विभाग किये जा सकते हैं :– 1. प्रकृति 2. प्रत्यय*

कुंजीभूत शब्द– समुदाय, विभक्तिमय, विभूषित, परिणामस्वरूप, वक्रता ग्रहण, निवास, वक्रता, उत्तरार्ध।

परिणामस्वरूप, आचार्य कुन्तक ने 'पद' के अन्तर्गत दो तरह की वक्रता ग्रहण की है पद के पूर्वार्द्ध (प्रकृति) के निवास करने वाली ''पद–पूर्वार्द्ध वक्रता''[2] तथा पद के उत्तरार्ध (प्रत्यय) में निवास करने वाली ''पद परार्द्ध वक्रता''। वास्तव में प्रकृति मूल शब्द है, जिसमें दो रूप (भेद) है।

1. प्रातिपादिक 2. धातु

पद का पूर्वार्द्ध प्रातिपादित 'सुबन्त' होता है जबकि 'तिड़न्त' का धातु कहा जाता है। संक्षेप में ''पद–पूर्वार्द्ध वक्रता'' से आशय–प्रातिपादिक तथा धातु की वक्रता से है, जो वास्तव में मूल शब्द की वक्रता होती है।

पद–पूर्वार्द्ध वक्रता के मुख्य भेद

1. रूढ़ि वैचित्र्य–वक्रता
2. पर्याय–वक्रता
3. उपचार– वक्रता
4. विशेषण– वक्रता
5. वृत्ति– वक्रता
6. संवृत्ति– वक्रता
7. लिंग वैचित्र्य– वक्रता
8. क्रिया वैचित्र्य– वक्रता

1. रूढ़ि वैचित्र्य–वक्रता – ''पद–पूर्वार्द्ध–वक्रता'' का पहला भेद है– रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता होता है। आचार्य कुन्तक ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी वक्रोक्तिजीवितम् में लिखा है– ''जहाँ लोकोत्तर तिरस्कार अथवा प्रशंसा–बोधन के लिये रूढ़ शब्द में किसी असम्भाव्य धर्म का अध्यारोप करके उसकी निन्दा अथवा प्रशंसा की जाये या विद्यमान धर्म के अतिशय का आरोप–गर्भित रूप में कथन दिया जाये और परिणामस्वरूप उक्ति में अपूर्व सौन्दर्य आ जाए, वहाँ रूढ़िवैचिष्य–वक्रता होती है।''[3] स्पष्ट है कि यह वक्रता रूढ़ि के वैचिष्य पर आधारित है। शब्द के नियत बोधकत्व रूप धर्म विशेष को 'रूढ़ि' कहते हैं, अर्थात् शब्द के अर्थ विशेष पर रोहण करना 'रूढ़ि' है। कवि अपनी काव्य सर्जना के द्वारा रूढ़ अर्थ पर ऐसे मनोहर असम्भाव्य अर्थ का अध्यारोप अथवा पदार्थ के विद्यमान धर्म पर अद्भुत अतिशय आरोप कर देता है, कि उस प्रयोग विशेष से उक्ति में विचित्र चमत्कार आ जाता है। अतः रूढ़ आह्लादकारी अन्य अपूर्व अर्थ का संक्रमण ही रूढ़िवैचिष्य–वक्रता है इस वक्रता की कमनीयता लक्षण पर आश्रित है तथा ध्वनिकार ने अर्थान्तर संक्रमित 'वाच्य–ध्वनि' में इसका विवेचन किया है।

वस्तुतः रूढ़िवैचिष्य–वक्रता में असम्भाव्य अर्थ का प्रत्यारोपण किया जाता है, क्योंकि इसमें लोकोत्तर अथवा प्रशंसा की विवक्षा है। 'रूढ़ शब्द' निर्जीव होते हैं।

जब कवि इनमें कमनीय अर्थ का संक्रमण करता है। रूढ़ का 'यही अद्भुत चमत्कार पूर्ण विस्तार रूढ़िचिष्य वक्रता की गति है। इस सन्दर्भ में डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह ने उचित ही लिखा है– ''इस रूढ़ि वैचिष्य वक्रता से यह भी सिद्ध होता है कि कविता में अर्थ को प्राप्त होता है, फैलता है। इसलिए कोश के रूढ़ अर्थ से भिन्न कविता के अर्थ की विच्छित्ति कुछ और ही हुआ करती है।''[4]

''अज्ञेय'' काव्य में ''पद–पूर्वार्द्ध वक्रता''

आचार्य कुन्तक द्वारा निरूपित ''पद–पूर्वार्द्ध वक्रता'' के समस्त भेद अपने सम्पूर्ण वैभव सहित अज्ञेय जी के काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं।

अज्ञेय काव्य में रूढ़ि वैचिष्य–वक्रता – अज्ञेय जी द्वारा रचित काव्य में इस वक्रता का बाहुल्यता के साथ प्रयोग किया गया है। वैदग्ध्य कवि अज्ञेय जी ने अनेक स्थलों पर शब्दों को प्रचलित अर्थ में ग्रहण न करते हुए वस्तु के लोकोत्तर अपकर्ष अथवा उत्कर्ष के लिए रूढ़ि से हटकर विशिष्ट अर्थ में ग्रहण किया है। इससे उनके काव्य विशेष आकर्षण उत्पन्न गया है।

यथा – 1. ''शशि रजनी से कहता है, प्रेयसि, बोलो क्या जाऊँ? कहता पतंग से दीपक, यह ज्वाला कहो बुझाऊँ।''[5]

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

2. "मृत्यु अन्त है सब कुछ ही का फिर क्यों धींगा–धींगी, देरी? मुझे चले ही जाना है तो बिदा मौन ही हो फिर मेरी।"[6]

प्रथम उदाहरण में 'ज्वाला' शब्द का प्रयोग कवि ने रूढ़ि ये हटकर किया है। जिससे अभिव्यक्ति में अद्‌भुत सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है। 'ज्वाला' पतंगे को जलाने वाली होती हैं। लेकिन यहाँ प्रेम–रज्जू के अर्थ में कवि ने प्रयोग करके अपूर्व सौन्दर्य की अनुभूति करा दी है। परिणामस्वरूप यहाँ 'रूढ़ि वैचिष्य वक्रता' का सौन्दर्य समस्त प्रसंग को रमणीयता प्रदान कर रहा है।

द्वितीय उदाहरण के अन्तर्गत प्रतिभावान कवि ने 'चले जाना' क्रिया का प्रयोग विलक्षण अर्थ में करते हुए अद्‌भुत रोचकता उत्पन्न कर दी है, जो रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता की पृष्ठभूमि उत्पन्न करने में समक्ष हो गयी है। वस्तुतः चले जाना, क्रिया का परम्परागत प्रयोग गमन करने से है, परन्तु यहाँ कवि ने इस शब्द द्वारा महाप्रस्थान की व्यंजना करते हुए अद्‌भुत काव्य–कौशल का परिचय दिया है।

इस प्रकार अज्ञेय काव्य में 'रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता' के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

2. पर्याय–वक्रता – 'पद्–पूर्वार्द्ध वक्रता' का द्वितीय भेद है– 'पर्याय–वक्रता। साधारणतः सभी भाषाओं में किसी एक मूल अर्थ से सम्बद्ध रहने वाले उसके वाचक अनेक शब्द होते हैं। ये समानार्थी संज्ञा शब्द ही पर्याय शब्द कहलाते है। सामान्य रूप में ये 'पर्याय–शब्द' अभिन्न समान अर्थ के ही द्योतक होते है, किन्तु व्युत्पत्तिपरकता के कारण ये अपने विलक्षण अभिव्यंग्यार्थ का प्रतिपादन करते हैं। अतः कवि को उनके मूल में निहित अर्थ–छायाओं का साक्षात्कार करके उनका सटीक प्रयोग करना चाहिए। हर एक शब्द की अपनी आत्मा होती है, उसका अपना संगीत होता है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत जी लिखते हैं– "भिन्न–भिन्न पर्यायवाची श्ब्द, प्रायः संगीत भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, भौहों से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का ह्रदय में अनुभव होता है। ऐसे ही हिलोर में उठान 'लहर' में सलिल के वक्षस्थल की कोमल कम्पन, तरंग लहरों के समूह का एक दूसरे को धकेलना, उठकर गिर पड़ना, 'बढ़ो–बढ़ो' कहने का शब्द मिलता है।"[7] फिर "शब्दों के रूप गुण और ध्वनि से जितना शब्द कवि को है, उतना किसी साहित्यकार को नहीं है।"8 अज्ञेय जी के शब्दों में–"कोई शब्द दूसरे का सम्पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक शब्द के अपने वाच्यार्थ के अलावा अलग–अलग लक्षणाएँ और व्यंजनाएँ होती है–अलग–अलग संस्कार और ध्वनियाँ।"[9]

फलस्वरूप प्रतिभा–सम्पन्न कवि प्रत्येक शब्द की चेतना को जाँच परखकर उसके सुष्ठ प्रयोग द्वारा अपने काव्य में अपूर्व सौन्दर्य की उद्‌भावना करते हैं। पर्याय शब्दों के इन विभिन्न चमत्कारों का प्रयोग कौशल ही 'पर्याय वक्रता' है, आचार्य कुन्तक के द्वारा पर्याय–वक्रता को निम्न प्रकार समझाया गया है– "जो वाच्य का अन्तरतम, उसके अतिशय का पोषक सुन्दर शोभान्तर के स्पर्श से वाच्यार्थ को सुशोभित करने में समर्थ है, जो स्वयं (बिना विशेषण के) अथवा विशेषण के योग से भी अपने सौंदर्यातिशय के कारण मनोहर है और जो असम्भव अर्थ के आधार रूप से भी वाच्य होता है, जो अलंकार से संस्कृत होने अथवा अलंकार का शोभा–दायक होने से मनोहर रचना से युक्त है :– ऐसे पर्याय अर्थात् संज्ञा शब्द (के प्रयोग) के परमोत्कृष्ट पर्याय वक्रता होती है।"[10]

वास्तव में पर्याय वक्रता में कहीं शब्द में किसी स्थान विशेष पर अन्य शोभा के स्पर्श मात्र से चमत्कार उत्पन्न हो जाता है, तो कहीं अपने ही सौन्दर्यातिशय के कारण वह मनोहर हो जाता है, तो कहीं वाच्य अर्थ के अन्तरतम् के रहस्य को प्रकट करता है, तो कहीं उसके अतिशय की रंजना करता है। एक स्थान पर यदि विशेषण के योग से उसमें अपूर्व वमत्कार आता है तो अन्यत्र किसी लोकोत्तर अर्थ का अध्यारोप रहता है। इसी तरह यदि कहीं पर्याय अलंकार युक्त है, तो कहीं अलंकार की शोभा उसके आश्रित रहती है। यही पर्याय वक्रता के अवांतर भेद माने गये हैं। ध्वनिवादियों ने पर्याय–ध्वनि, अलंकारवादियों ने परिकरालंकार नाम से पर्याय–वक्रता को ही अभिहित किया है। पर्याय वक्रता के अर्थ विवेक का सूक्ष्म बोध आधुनिक शब्दावली में निहित है।

"अज्ञेय" काव्य में "पर्याय–वक्रता"

'अज्ञेय' कृत काव्य में अनेक स्थनों पर "पर्याय–वक्रता" के चमत्कार की पूर्ण निबन्धना हुई है। विशिष्ट पर्यायवाची शब्दों के साभिप्रयः प्रयोग द्वारा अभिव्यंजना में विलक्षण मार्दव उत्पन्न हो गया है। अज्ञेय जी के काव्य में 'पर्याय वक्रता' के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :–

1. "तिमिर में दामिनी दमक गयी"23
2. "दीप बुझ चुका, दिपन की स्मृति शुन्य जगत् में छूट जायेगी"24

प्रथम उदाहरण में कवि ने बताया है कि अन्धकार में आकाशीय बिजली क्षण–भर के लिए चमक (रोशनी) उत्पन्न कर गयी। यहाँ मर्मज्ञ कवि ने दमक के साथ दामिनी का प्रयोग भाव प्रकाशन हेतु सटीक ढंग से किया हैं। जो दामिनी के अन्य पर्यायों से सम्भव नहीं था।

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

द्वितीय उदाहरण में विश्वप्रिया के वियोग से व्यथित विश्वपुरूष की 'विरह वेदना' की अभिव्यक्ति कवि अज्ञंय जी ने की है। पंक्ति का अर्थ इस प्रकार है– प्रेम का दीप बुझ चुका है और, कुछ दिनों में, उसके आलोक की स्मृति भी सूने संसार में नष्ट हो जायेगीं। यहाँ आलोक के लिए 'दिपन' शब्द का प्रयोग अत्यन्त उपयुक्त है। जो कवि के शब्द कौशल प्रयोग की अद्भुत देन है। अतः 'पर्याय वक्रता' ने सम्पूर्ण प्रसंग को आकर्षक बना दिया है।

इस प्रकार उपर्युक्त अनुसंधान के आधार पर कहा जा सकता है कि अज्ञेय काव्य 'पर्याय वक्रता' की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि का काव्य है। इसमें स्थान–स्थान पर 'पर्याय वक्रता' के उदाहरण विद्यमान है।

3. 'उपचार–वक्रता'– 'पद–पूर्वाद्ध वक्रता' का तृतीय भेद है– 'उपचार–वक्रता'। उपचार वक्रता से आशय उपचार–प्रधान वक्रता से है। आचार्य कुन्तक ने उपचार–वक्रता की परिभाषा में कहा है– ''उपचाणमुपचार'' उप अर्थात् सादृश्य वश गौणचरण अर्थात् व्यवहार को उपचार कहते हैं।''[13]

इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा है– ''अन्य वस्तु का साधारण धर्म जहाँ अधिक दूर वाले पदार्थ पर लेश मात्र सम्बन्ध से आरोपित किया जाता है वही उपचार होता है।''[14] इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ प्रस्तुत दूरान्तर वस्तु पर अप्रस्तुत वस्तु के सामान्य धर्म का लेश मात्र सम्बन्ध से आरोपित किया जाता है, वहाँ उपचार होता है।

यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत एक दूसरे से बहुत दूर होते है। दूरान्तर–देश काल की भिन्नता न होकर मूल स्वभाव की भिन्नता का मतलब यह है कि यदि एक चेतन है तो दूसरा अचेतन, एक मूर्त है तो दूसरा अमूर्त, एक दृश्य है तो दूसरा अदृश्य और एक ठोस है तो दूसरा द्रव। वास्तव में उपचार मूलतः सादृश्य के आधार पर बना एक काल्पनिक ज्ञान है।

'उपचार–वक्रता' के अन्तर्गत तक्षण–वैभव के साथ–साथ पाश्चात्य काव्य शास्त्र के विश्लेषण–विपर्यय और मानवीकरण अलंकारों का रमणीय विलास समन्वित होता है। अतः काव्य में उपचार–वक्रता' का महत्त्व विशिष्ट स्थान रखता है।

'अज्ञेय' काव्य में 'उपचार–वक्रता'

'उपचापर–वक्रता कवि मन की मनोरम प्रसूति है, रचयिता का मन उसकी दिशाओं का अनुसन्धान करता है। इसलिए सम्यक् अनुशीलन करने से कवि मन की ग्रन्थियाँ खुलती है। अरस्तू ने कहा है– ''यही एक गुण है जिसका उपार्जन नहीं हो सकता, यह तो प्रतिभा का लक्षण है, क्योंकि औपचारिक प्रयोग की सिद्धि के लिये ऐसी दृष्टि उपेक्षित है, जो सादृश्य को ग्रहण कर सकें।''[15]

प्रयोगवादी कवि अज्ञेय जी ने सादृश्य को ग्रहण करने में अपनी अत्यन्त व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। इन्होंने लाक्षणिक प्रयोगों, रूपक, मानवीकरण एवं विशेषण विपर्यय अलंकारों में चमत्कार के रूप में 'उपचार–वक्रता' का ही संयोजन किया है। उपचार की सर्वप्रथम एवं रमणीय दिशा है– 'अमूर्त्त का 'मूर्न' विधान' दूरान्तर की दृष्टि से इनमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नही दिखता। दोनों एक दूसरे के प्रतिलोम हैं। लेकिन कवि की ' 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा' जब दोनों में किसी न किसी प्रकार का साम्य खोज लेती है तो यह चमत्कार वर्णन–अत्यन्त सहज लगने लगता है, और ह्रदय के सूक्ष्म स्पन्दन भी गोचर जाते हैं। इसके कुछ मंजुल प्रयोग अज्ञेय काव्य में देखे जा सकते हैं :–

(1) ''यदि मुख पर सोती अवहेला या रोती हो विकल व्यथा, दया भाव से झुक जाना प्रिय समझ ह्रदय की करूण कथा।''[16]

(2) ''मनः क्षितिज पर उदित शान्त करूणा कल्याणी/छवि। नमित, मुदित नीरव/कवि।''[17]

प्रथम उदाहरण में अवहेलना के 'सोने' और 'विकल–व्यथा' के रोने का वर्णन सूक्ष्म भावों की मार्मिक मूर्तिमत्ता के सफल प्रयोग हैं। सोना चेतन धर्म है, लेकिन कवि ने अवहेलना के मुखमण्डल पर सोने की बात कही है। इससे मुख पर अवहेलना की सतत् व्याप्ति का आभास सहज हो मिल जाता है। इसी प्रकार 'रोना' भी चेतन व्यक्ति का धर्म है, किन्तु यहाँ कवि ने 'विकल–व्यथा' को रोते हुए बताया है। इससे पात्र का दैन्य उभर कर सामने आ जाता है। इस प्रकार उपचार वक्रता की सफल अभिव्यंजना दर्शनीय है।

द्वितीय उदाहरण में 'मन' रूपी क्षितिज पर कल्याणी करूणा का आरोपण करके कवि प्रसन्न है, (हर्षातिरेक के कारण), मौन हैं। यहाँ विदग्ध कवि ने अमूर्त पर मूर्त का गोचर करके उपचार–वक्रता का सफल निर्गूहन किया है।

'उपचार–वक्रता' की एक रमणीय दिशा है– अचेतन पर चेतन का आरोप। पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र की शब्दावली में इसे मानवीकरण कहा गया है। यह एक मानवीकरण अलंकार मात्र नहीं है, अपितु वस्तु–दर्शन का एक दृष्टिकोण है। कवि की नैसर्गिक क्षमता का इससे अच्छा परिचय और क्या होगा, कि जड़ वस्तु को चेतन स्वरूप ही प्रदान कर दें। अज्ञेय काव्य में इसके अनेक उदाहरण मिल जाते हैं।

यथा – 1. ''पति सेवा रत साँझ उझकता देख पराया चाँद ललाकर ओट हो गयी।''[18]

प्रथम उदाहरण में संध्या एक पतिपरायण नारी के रूप में प्रकट होती हैं। वह सूर्य रूपी पति की सेवा में

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

संलग्न हैं। तभी चन्द्रमा उझककर उसके सौन्दर्य को देखना चाहता है।

वस्तुतः 'अज्ञेय जी' ने अपने काव्य में 'उपचार–वक्रता के आश्रय से अपनी उक्ति को अत्यन्त वमत्कारपूर्ण एवं आकर्षक बनाया है, इसमें संन्देह नहीं।

4. विशेषण–वक्रता – श्रेष्ठ काव्य की प्रमुख विशेषताओं में एक विशेषता है– विशेषणों का सौन्दर्वपूर्ण प्रयोग करना। प्रवीण कवि बहुत बड़े वाक्य में कहे जाने योग्य भाव को विशेषण के माध्यम से सहज हो व्यक्त कर देता है। इस प्रकार विशेषण काव्य के अनपेक्षित विस्तार को दूर करके उसमें गुणवृद्धि करते हैं। आचार्य महिमभट्ट के अनुसार–"ठीक स्थान पर प्रयुक्त न किये जाने पर वे किसी दूसरे अर्थ में जे अभीष्ट न होगा, अपनी विशेषता का आधान करेंगे और वैसा होने पर प्रस्तुत अर्थ की संगति नहीं होगी। मान लीजिए जैसे–तैसे क्रम तोड़कर भी अभीष्ट अर्थ से सम्बद्ध जोड़ लिया जाये, तब भी प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति में विघ्न पड़ जाने से उस पर आश्रित रसास्वादन में भी विघ्न पड़ जायेगा।"[19] अर्थात् जहाँ काव्य में विशेषण का समुचित स्थान पर प्रयोग सौन्दर्य वृद्धि में सहायक है वही उसका अनुवित स्थान पर प्रयोग मलिनता में सहायक होता है।

'अज्ञेय' काव्य में –विशेषण–वक्रता'

विशेषणों का सौन्दर्य श्रेष्ठ काव्य की महती विशेषता है, अतः 'अज्ञेय जी' के काव्य में विशेषणों की वैदग्ध्यपूर्ण संयोजना प्रमाता के ह्रदय को अनायास ही अपनी ओर खीचनें वाली हैं। मनीषी कवि 'अज्ञेय जी' ने विशेषण के सटीक प्रयोग से विशेष्य में अपूर्व चमत्कार तो उत्पन्न किया हो है, साथ ही साथ अपने भावों को भी स्पषट से स्पष्टतर बना दिया है:–

यथा – "मूर्ति पहली यह कितनी सुन्दर! और दूसरी– अरे रूपदर्शी! यह क्या है– यह विरूप विदूप डरौना?"[20]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्वतः सिद्ध हो जाता है कि 'अज्ञेय जी' 'विशेषण–वक्रता' के प्रयोग में अत्यन्त कुशल है, और उनके काव्य में 'विशेषण–वक्रता' काव्यगत सौन्दर्य वृद्धि में विशेष उपयोगी रही हैं।

(अ) वृत्ति–वक्रता – वृत्ति–वक्रता विशद एवं व्यापक है। आचार्य कुन्तक ने 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग कोमला, परूषा वर्ण–योजनाओं के सन्दर्भ में नहीं किया है, बल्कि व्याकरण शास्त्रों में प्रसिद्ध समास तद्धित सुब्धातु आदि वृत्तियों के सन्दर्भ में किया है। आचार्य कुन्तक का वृत्ति–वक्रता के विषय में अभिमत है– "जिसमें अव्ययीभाव आदि (समास, तद्धित कृत आदि) वृत्तियों का सौन्दर्य प्रकाशित होता है, उसको 'वृत्ति–वैचित्र्य वक्रता' समझना चाहिये।"[21] वृत्तिया में मुख्य हैं– अव्ययीभाव समास, यह चमत्कार का प्रमुख आधार होता है, अतं एवं आचार्य कुन्तक द्वारा इसे प्रमुखता प्रदान की गयी है, लेकिन अव्ययीभाव समास वृत्ति–वक्रता उप लक्षण मात्र है। समास वक्रता विशद् एवं व्यापक हैं। आचार्य कुन्तक का समास वक्रता से आशय ऐसी रचना से है जहाँ सामासिक पदावली सम्पूर्ण वातावरण का बोध करा दें।

आचार्य कुन्तक ऐसे रचना विधान में वृत्ति–वक्रता मानते हैं जिसमें विषय अथवा भाव के अनुरूप तद्धित, कृदन्त एवं सुब्धातु आदि वृत्तियों का सौन्दर्य हैं।

"अज्ञेय" काव्य में "वृत्ति–वक्रता"

अज्ञेय काव्य में अव्ययीभाव समास का सौन्दर्य बहुलता से मिलता है, इसके प्रयोग से उक्ति में लाघव एवं काव्यात्मकता की मात्रा बढ़ जाने से कवि इसका प्रयोग सदा ही प्रभूत मात्रा में करते रहे हैं। इनके काव्य में अव्ययीभाव के बहुत रम्य उदाहरण मिलते हैं :–

1. "मेरे प्राण स्वयं राखी से प्रतिक्षण तुमको घेरे रहते है।"[22]

उपर्युक्त उदाहरर्ण में प्रयुक्त काले शब्दों में अव्ययीभाव का चमत्कार ही प्रस्फुटित हो रहा है। अव्ययीभाव के प्रयोग से कवि ने अपनी उक्तियों को तनु कलेवर और सौन्दर्य सम्पन्न बना दिया है।

वस्तुतः अज्ञेय काव्य में 'वृत्ति वक्रता' का सौन्दर्य स्थान–स्थान पर दृष्टि गोचर हो रहा है।

5. संवृत्ति–वक्रता – संवृत्ति शब्द का तात्पर्य है संवरण अर्थात् छिपाना। जब विदध्य कवि सर्वनामादिकों के विवक्षित प्रयोग द्वारा किसी वस्तु को छिपा देता है तो उसकी वक्र भावाभिव्यक्ति की इच्छा होती है। इसी कवि व्यापार को विद्वानों ने संवृत्ति–वक्रता की संज्ञा प्रदान की है।

आचार्य कुन्तक के अनुसार "जहाँ किसी वैचित्र्य के कथन की इच्छा से किन्हीं सर्वनाम आदि के द्वारा वस्तु का निगूहन (संवरण) किया जाता है, वहाँ सवृत्ति–वक्रता होती है।"[23] अर्थात् जब किसी वैचित्र्य के कथन की इच्छा से सर्वनामादि द्वारा किसी वस्तु का निगूहन होता है तव संवृत्ति–वक्रता होती है। अनेक भाव स्थितियों का चित्रण कवि स्पष्ट रूप से न करके सांकेतिक सर्वनामों के माध्यम से करता है वहाँ कविता का सौन्दर्य द्विगणित हो जाता है, क्योंकि रहस्य सा बन जाता है उस समय वह 'अर्ध ढँकत छवि देते है, कवि आखर कुच केस' वाली सत्यता से परिचालित होता है। विंदग्ध्य कवि का कवित्य कभी भी खुलकर पूरे प्रकाश में नहीं आता है, धुँधले शब्दों के झीने अवगुंठन से उसका रूपलावण्य और भी अधिक निखर

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

जाता है।

"अतः संवरण एक विशिष्ट कला है। अंग्रेजी में एक कहावत है– "Art lies concealing art" अर्थात् कला के संवरण करने में कला का महत्त्व निहित है। वास्तव में संवरण करने के प्रयोग से मर्मज्ञ कवि अपने कावय मे अद्‌भुत चमत्कार की सृष्टि करता है।

"अज्ञेय" काव्य में "संवृत्ति–वक्रता'

अज्ञेय काव्य में 'संवृत्ति–वक्रता' का उदाहरण देखे।

1. "ओ विशाल तरू! शत सहस्र पल्लवन–पतझरों ने जिस का नित रूप सँवारा कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी।"[24]

उद्धरण 24 में संवृत्ति वक्रता का रूप दर्शनीय है। अज्ञेय कवि ने कितनी, कितने शब्दों का प्रयोग करते हुए संख्या का गोपन करके अगण्य संख्या की व्यंजना करने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है। जिससे समस्त प्रसंग में 'संवृत्ति–वक्रता' का सौन्दर्य झलक उठा है।

'अज्ञेय–काव्य' में 'संवृत्ति–वक्रता' का सौन्दर्य सम्पूर्णता के साथ व्याप्त है, जिसने अज्ञेय 'काव्य' को महामण्डित करने में अत्यन्त सफल योगदान दिया है।

6. लिंग वैचित्र्य–वक्रता– जहाँ लिंग के चमत्कार पूर्ण प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति या कथन (उक्ति) में विशिष्ट सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है, वहाँ "लिंग वैचिवत्र्य–वक्रता" होती हैं। आचार्य कुन्तक ने इनके तीन रूपो का उल्लेख किया है –

(क) विभिन्न लिंगों का समानध्किरण – "विभिन्न लिंग वाले शब्दों का एक ही अधिष्ठान में समानाधिकरण रूप से प्रयोग कर प्रतिभावना कवि अपनी कवि अपनी उक्ति में विलक्षणता विच्छित्ति उत्पन्न करते हैं, वहाँ यह वक्रता होती है।"[25]

(ख) स्त्रीलिंग का प्रयोग – "जहाँ अन्य लिंग सम्भव होने पर भी शोभातिरेक के सम्पादन के लिए अन्य लिंगों का तिरस्कार कर स्त्रीलिंग का ही प्रयोग किया जाता है, वहाँ भी लिंग–वैचित्र्य वक्रता होती है।"[26]

(ग) विशिष्ट लिंग का प्रयोग – "अर्थ के औचित्य का विचार कर जहाँ अन्य लिंग की अवहेलना करके किसी शब्द का विशिष्ट लिंग में प्रयोग करते हैं, वहाँ भी लिंग की वक्रता मान्य होती है।"[27] आचार्य कुन्तक ने लिंग वक्रता के सबसे चमत्कारी पक्ष का संकेत इस रूप के अन्तर्गत दिया है। शब्दों के वास्तविक लिंग का बोध उनेक अर्थ से ही होता है। कविवर पन्त ने ठीक ही कहा है, "मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग पुल्लिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है।"[28]

'अज्ञेय' काव्य में लिंग–वक्रता'

प्रयोगवाद के प्रवर्तक कवि 'अज्ञेय जी' अत्यन्त सहृदय कवि है अतः इनके काव्य में कलागत उत्कर्ष सर्वत्र विद्यमान है। इनके काव्य में 'लिंगगत–वक्रता का सौन्दर्य भी पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है। 'लिंग–वक्रता' के अन्तर्गत लिंगों के विपर्यय का सौन्दर्य व्याप्त रहता है। अर्थात् पुल्लिंग के लिए स्त्रीलिंग, स्त्रीलिंग के लिए पुल्लिंग का प्रयोग करके कवि अपनी उक्ति अथवा कथन में सौन्दर्य उत्पन्न कर देता है।

इस प्रकार लिंग के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग से कवि अपने काव्य में रम्यता का संचार करता है। लिंगों के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग में संवेदनशील कवि 'अज्ञेय' अत्यन्त पटु हैं, यही कारण है कि उनके काव्य में 'लिंग वैचित्र्य–वक्रता' का अनन्त सौन्दर्य प्रमाता के चित्त को चमत्कृत कर देता है। स्पष्टीकरण के लिए कतिपय उदाहरण अवेक्षणीय है :–

1. "जगत का क्रीडा–स्थली में संगियों के साथ खेला– सघन कुँजों में पड़े तूने स्त्रियों का प्यार झेला।"[29]

प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने क्रोड़ा स्थल के लिए क्रीड़ास्थली शब्द का प्रयोग करके लिंग परिवर्तन द्वारा अपने कथन को अधिक सशक्त एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है। परिणमस्वरूप सम्पूर्ण प्रसंग में 'लिंग–वक्रता' का सौन्दर्य विराजमान हो रहा है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर स्वतः सिद्ध हो जाता है कि कवि 'अज्ञेय' जी के काव्य में "लिंग–वैचित्र्य वक्रता" स्थल–स्थल पर विद्यमान है।

7. क्रिया वैचित्र्य–वक्रता –जिस प्रकार पर्याय अथवा विशेषण के सुभग प्रयोग से उक्ति में चमत्कार आ जाता है, उसी प्रकार क्रिया के रम्य प्रयोग से भी कथन खिल उठता है। क्रिया के सौन्दर्य की महिमा बहुत अधिक है। वाक्य के अनेक दोषों को क्रिया की रमणीयता ढक लेती है। वास्तव में क्रिया की विचित्रता काव्य में विलक्षणता का उत्पादन करने में सहायक है। काव्य के अन्तर्गत क्रिया की आवश्यकता विशेषण और अव्यय की तुलना में अधिक होती है। अतः विशेषण और अव्यय आदि का परित्याग तो सम्भव है, लेकिन क्रिया का नहीं। इसी कारण से क्रिया काव्य के जीवन हेतु आवश्यक तत्त्व है। काव्यशास्त्र में आचार्य कुन्तक ने क्रिया वैचित्र्य के पाँच भेद माने हैं–

(क) क्रिया का कर्त्ता के अन्तरभूत तत्त्व के रूप में स्थित होना।

(ख) कर्त्ता की अन्य कर्त्ताओं के साथ विचित्रता।

(ग) क्रिया के विशेषण का विचित्रता।

(घ) उपचार मनोज्ञता।

(ड़) कर्मादि संवृत्ति ।

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

'अज्ञेय' काव्य में 'क्रिया–वैचित्र्य वक्रता'

क्रिया वैचित्र्य के अनुपम योगदान के बिना काव्य में सौन्दर्य वृद्धि नहीं हो पाती है, क्योंकि सम्पूर्ण वाक्य में क्रिया का सर्वाधिक महत्त्व हुआ करता है। कवि अज्ञेय जी इस रोचक तथ्य से भली–भाँति परिचित थे, अतः इनके काव्य में 'क्रिया–वैचित्र्य' का अनूठा स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। जिससे इसका काव्य गरिमामण्डित हो गया है। निम्नलिखित कतिपय उदाहरणों से हम अपने कथन की पुष्टि करते हैं :–

1. "जिनके अवलोकित भर से कट जाते हैं, माया के पास।"[30]

2. "दिन–दिन धुँधलाती आँखो से सुस्पष्ट देखता जाता।"[31]

उद्धरण 30 में कवि अज्ञेय जी ने महात्मा बुद्ध के दर्शन करने से 'माया–पाश' के कट जाने का वर्णन किया है। वास्तव में पाश का कट जाना दृष्टि से सम्भव नहीं है, लेकिन बुद्ध का महत्त्व दिखाने के लिए अन्य धर्म का आरोप कर दिया है। परिणामस्वरूप क्रिया में एक अपूर्व चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

उद्धरण 31 में धुँधलाती हुई आँखे अपने स्वाभाविक धर्म–'मन्द दिखाई पड़ना' के विपरीत अधिक स्पष्ट देखती जाती है। यही कर्तन्तर की विचित्रता है। जो क्रिया वैचित्र्य वक्रता का एक भेद है।

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'अज्ञेय–काव्य' में 'क्रिया–वैचित्र्य वक्रता' की मनोहरता स्थान–स्थान पर विद्यमान है।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अज्ञेय–काव्य' वैदग्ध्यजन्य रमणीयता से निखर उठा है। 'पद–पूर्वार्द्ध वक्रता' के सौन्दर्य ने इसको अनुपम रमणीयता प्रदान की है तथा इसके अनेक भेदों और उपभेदों का आश्रय लेकर काव्य की महिमा द्विगणित हा उठी है। भाव और विचारों के अनुकुल सटीक शब्दों के भेद–प्रभेदों के संचयन में कवि अज्ञेय जी अधिक सजग रहे हैं। परिणामरूवरूप इनके काव्य में 'पद–पूर्वार्द्ध वक्रता' के भेद–प्रभेदों का बाहुल्य के साथ प्रयोग हो सका है। 'रूढ़ि–वैचित्र्य वक्रता' के द्वारा अज्ञेय जी ने अपनी उक्ति को विशेष बल दिया है, 'पर्याय–वक्रता' के प्रयोग ने कवि के शब्दार्थ ज्ञान की उच्चता की घोषणा कर दी है। 'उपचार–वक्रता' और 'विशेषण–वक्रता' के माध्यम से कवि अपनी अभिव्यक्ति को रमणीयता प्रदान करने में पूर्णतया सक्षम रहा है। 'संवृत्ति–वक्रता' के द्वारा कवि ने अपनी भाषा सामर्थ्य को अधिक सशक्तता प्रदान कर दी है। भाषा के सौन्दर्य को अधिक आकर्षक बनाने में 'वृत्ति वक्रता' की शोभा देखते ही बनती है। 'लिंग–वक्रता' और 'क्रिया–वैचित्र्य वक्रता' से कवि के कथन को अधिक बल मिलता रहा है। पर्याय वक्रता के सुस्पष्ट प्रयोग द्वारा यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि अज्ञेय कवि हर शब्दों के प्रयोग में अत्यन्त सजग है।

वस्तुतः इन वक्रताओं से अपने काव्य को अर्थ व्यंजकता की शक्ति से समृद्ध कर प्रयोगवादी कवि अज्ञेय जी हिन्दी सहित्य में विशिष्ट स्थान के अधिकारी बन गये है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। अन्त में यही कहा जा सकता है कि अज्ञेय काव्य में 'पद–पूर्वार्द्ध वक्रता' के विविध रूप इनके काव्य को चारुता प्रदान करते हुए महिमामण्डित करने में सफल रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य पाणिनी : अष्टाध्यायी, प्रकाशक–चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी 1 ।।4।।4।।
2. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई० 2।।8–9।।
3. 'शब्दस्य नियतवृत्तिता नाम कश्चिद् धर्मो रूढ़िरूच्यते। रोहणं रूढ़िरिति कृत्वा।' आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, पृष्ठ 192.
4. वक्रोक्ति सिद्धान्त और छायावाद, लेखक–डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह, प्रकाशक–परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1970 ई० पृष्ठ 315
5. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–1, प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 98 ।।42।।
6. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–1, प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 98 ।।43।।
7. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव (भूमिका), प्रकाशक राज कमल प्रकाशन दिल्ली, षष्ठ संस्करण। पृष्ठ 29 30 .
8. आचार्य रामधारी 'दिनकर' : मिट्टी की ओर, प्रकाशन–उदयाचल प्रकाशन पटना, 1949 ई० पृष्ठ 7.
9. अज्ञेय : तीसरा सप्तक (भूमिका), पृष्ठ 7.

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

10. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, 2।।10–11–12।।
11. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–1, प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 23.
12. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–1, प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 54 । 60 ।
13. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, पृष्ठ 223.
14. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, पृष्ठ 2।।3।।
15. अरस्तू का काव्यशास्त्र–सम्पादक, डॉ० नगेन्द्र, प्रकाशक–भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद प्रथम संस्करण। पृष्ठ 60–61.
16. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–2, (सम्पूर्ण कविताएँ 1929–1956) प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 21.
17. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–2, (सम्पूर्ण कविताएँ 1929–1956) प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 30.
18. स०ही०वा० अज्ञेय : अरी ओ करूणा प्रभामय प्रकाशन वर्ष 1959, पृष्ठ 67.
19. आचार्य महिम भट्ट : हिन्दी व्यक्ति विवेक (सम्पादक रेवती प्रसाद द्विवेदी), प्रकाशक–चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1964 ई०, पृष्ठ 156.
20. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–2, (सम्पूर्ण कविताएँ 1929–1956) प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 19.
21. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, पृष्ठ 2।।19।।
22. अज्ञेय : पूर्वा पृष्ठ 87.
23. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, पृष्ठ 2।।6।।
24. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–2, (सम्पूर्ण कविताएँ 1929–1956) प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 110.
25. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, 2।।21।।
26. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, 2।।22।।
27. आचार्य कुन्तक : हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, लेखक–राजानक, कुन्तक, व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक–आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1855 ई०, 2।।23।।
28. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव (विज्ञापना), प्रकाशकराज कमल प्रकाशन दिल्ली, षष्ठ संस्करण। पृष्ठ 12
29. स०ही०वा० अज्ञेय : सदानीरा–भाग–1, प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण सन् 1986 ई०। पृष्ठ 58.
30. अज्ञेय : उत्तरप्रियदर्शी, पृष्ठ 18.
31. अज्ञेय : आँगन के पार द्वार, पृष्ठ 7.

*****

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*